समयसार

(पद्यानुवाद)

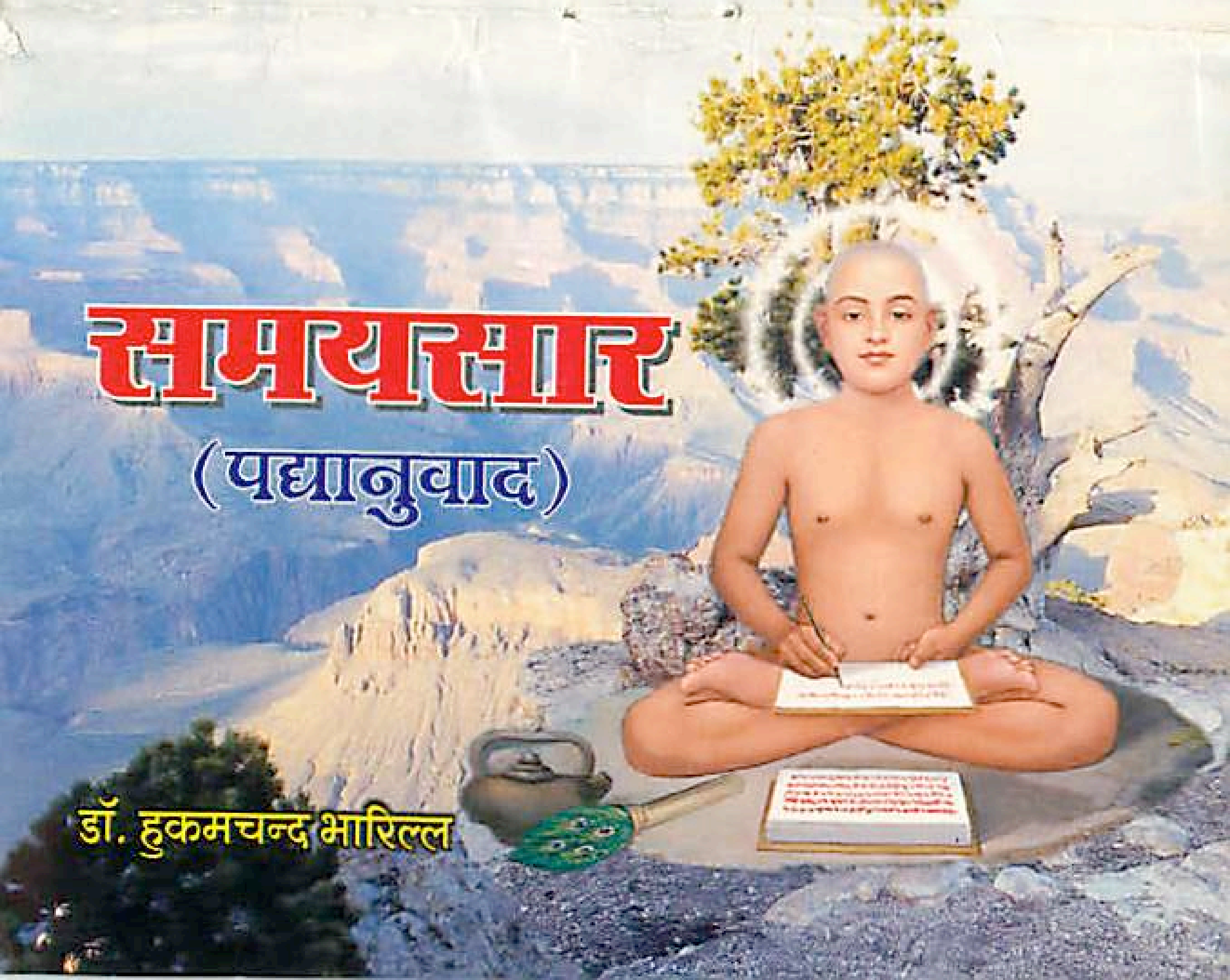

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

समयसार

(पद्यानुवाद)

अनुवादक

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी.

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४, बापू नगर, जयपुर ३०२ ०१५

प्रथम तीन संस्करण : २० हजार २००
(२७ नवम्बर, १९८८ से अद्यतन)
चतुर्थ संस्करण : २ हजार
(१२ नवम्बर, २००४)
कुल योग : २२ हजार २००

मूल्य : तीन रुपये

इस पुस्तक की कीमत कम करने हेतु साहित्य प्रकाशन ध्रुवफण्ड पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर की ओर से २८०२/- रु. प्रदान किए गए।

(समयसार पद्यानुवाद के संगीतमय कैसिट भी उपलब्ध हैं।)

मुद्रक : जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि., जयपुर

प्रकाशकीय
(चतुर्थ संस्करण)

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा रचित समयसार पद्यानुवाद का यह चतुर्थ संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

सर्वप्रथम इसका प्रकाशन आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी समारोह के अवसर पर किया गया था। अबतक इसकी २० हजार २०० प्रतियों का समाप्त हो जाना कृति की महत्ता को दर्शाता है। यह इसका चतुर्थ संस्करण है जो २ हजार की संख्या में प्रकाशित किया जा रहा है।

इस कृति की सफलता को देखते हुए इसका संगीतमय कैसिट भी तैयार कराया गया है, जिसका समाज ने उत्साहपूर्वक स्वागत किया। आज इसकी गूँज मुमुक्षु समाज के प्रायः हर घर में हो रही है।

कुन्दकुन्द वर्ष में 'कुन्दकुन्द शतक' एवं 'शुद्धात्म शतक' का भी पद्यानुवाद हमारे द्वारा प्रकाशित किया गया था। उक्त दोनों कृतियों का भी अध्यात्मप्रेमी समाज ने दिल खोलकर स्वागत किया। उत्साहजनक परिणाम मिलने से इन कृतियों के मराठी, कन्नड़, गुजराती व अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित किये गए हैं, साथ ही संगीतमय कैसिटें भी तैयार कराई गई हैं; जो हमारे कैसेट विभाग में सदा उपलब्ध रहती हैं। अब आचार्य अमृतचंद्र के कलशों का पद्यानुवाद भी डाक्टर साहब कर रहे हैं, जो समयसार अनुशीलन में क्रमशः छप ही रहा है, बाद में स्वतंत्र रूप से भी छपेगा। उसके कैसेट बनाने की भी योजना है।

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी समारोह वर्ष में इस संस्था के माध्यम से हमने आचार्य कुन्दकुन्द के जीवन और उनके पंचपरमागमों के सार को

संक्षेप में प्रस्तुत करने वाली डॉ. भारिल्ल की १५६ पृष्ठीय सरल-सुबोध कृति 'आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम' को भी प्रकाशित किया था, वह भी काफी लोकप्रिय सिद्ध हुई। इसीप्रकार राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. के लिए स्वीकृत डॉ. शुद्धात्मप्रभा का शोध प्रबंध 'आचार्य कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार' भी प्रकाशित की गई।

आचार्य कुन्दकुन्द के पंचपरमागम तो हमारे यहाँ हमेशा उपलब्ध रहते ही हैं। इसप्रकार आचार्य कुन्दकुन्द और उनके व्यक्तित्व को जन-जन तक पहुँचाने के महान कार्य में डॉ. भारिल्ल के सहयोग एवं निर्देशन में हमने जो भी संभव हुआ, पूरी शक्ति से किया है। यही कारण है कि आज आचार्य कुन्दकुन्द और उनका साहित्य सम्पूर्ण जैन समाज में पठन-पाठन का विषय बन गया है।

इस पद्यानुवाद के संबंध में मुझे विशेष कुछ नहीं कहना है; इसे पढ़कर आप स्वयं ही निर्णय करें कि यह प्रयास कहाँ तक सफल रहा है? हाँ, इसकी एक विशेषता की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि यह अत्यन्त सरल व सहज ग्राह्य है, इसके अन्वय की आवश्यकता नहीं है; यह विषय-वस्तु को बड़ी सहजता से स्पष्ट करता चलता है। मूल विषय को प्रस्तुत करने में यह पूर्ण प्रामाणिक एवं समर्थ है। साधारण से साधारण आत्मार्थी भी इसके माध्यम से समयसार की विषय-वस्तु से परिचित हो सकता है।

इस कृति का मुद्रण कार्य जयपुर प्रिन्टर्स प्रा. लि., जयपुर द्वारा किया गया है। अतः प्रेस के प्रबन्ध निदेशक श्री प्रमोदजी जैन का हम हृदय से

आभार मानते हैं। मुद्रण व्यवस्था सदा की भाँति विभाग के प्रभारी अखिल बंसल ने सम्हाली है अतः वे भी बधाई के पात्र हैं।

जिन महानुभावों ने इस कृति को अल्पमूल्य में जन-जन तक पहुँचाने हेतु अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया है वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं।

अध्यात्मप्रेमी समाज अपने दैनिक पाठ में इसे स्थान देकर लोकप्रिय बनाने में तो सहयोग दे ही रहा है, इसके चिन्तन-मनन से अपने जीवन को भी सार्थक बनावें – इसी आशा के साथ!

ब्र. यशपाल जैन
प्रकाशन मंत्री

१२ नवम्बर, २००४

लेखक के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

०१. समयसार अनुशीलन भाग-१	२५.००	१९. बारह भावना : एक अनुशीलन	१२.००
०२. समयसार अनुशीलन भाग-२	२०.००	२०. दृष्टि का विषय	१०.००
०३. समयसार अनुशीलन भाग-३	२०.००	२१. गागर में सागर	७.००
०४. समयसार अनुशीलन भाग-४	२०.००	२२. पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव	७.००
०५. समयसार अनुशीलन भाग-५	२५.००	२३. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन	१०.००
०६ प्रवचनसार अनुशीलन	३०.००	२४. आचार्य कुन्दकुन्द और उनके पंचपरमागम	५.००
०७. समयसार का सार	२५.००	२५. जिनवरस्य नयचक्रम	६.००
०८. पण्डित टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व	२०.००	२६. युगपुरुष कानजीस्वामी	५.००
०९. परमभावप्रकाशक नयचक्र	२०.००	२७. वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	१२.००
१०. चिन्तन की गहराइयाँ	२०.००	२८. मैं कौन हूँ	४.००
११. तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ	१५.००	२९. निमित्तोपादान	३.५०
१२. धर्म के दशलक्षण	१६.००	३०. अहिंसा : महावीर की दृष्टि में	३.००
१३. क्रमबद्धपर्याय	१२.००	३१. मैं स्वयं भगवान हूँ	३.००
१४. बिखरे मोती	१६.००	३२. रीति-नीति	३.००
१५. सत्य की खोज	१६.००	३३. शाकाहार	२.५०
१६. आप कुछ भी कहो	८.००	३४. तीर्थंकर भगवान महावीर	२.५०
१७. आत्मा ही है शरण	१५.००	३५. चैतन्य चमत्कार	२.००
१८. मुक्ति-सुधा	१८.००	३६. गोली का जवाब गाली से भी नहीं	२.००
		३७. गोम्मटेश्वर बाहुबली	१.००

३८. वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर, ३९. अनेकान्त और स्याद्वाद, ४०. शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर, ४१. सार समयसार, ४२. बिन्दु में सिन्धु, ४३. बारह भावना एवं जिनेन्द्र वन्दना, ४४. कुन्दकुन्द शतक पद्यानुवाद, ४५. शुद्धात्म शतक पद्यानुवाद, ४६. समयसार पद्यानुवाद, ४७. योगसार पद्यानुवाद, ४८. समयसार कलश पद्यानुवाद, ४९. द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद, ५०. अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद, ५१. अर्चना जे.बी., ५२. कुन्दकुन्द शतक (अर्थ सहित), ५३. शुद्धात्मक शतक (अर्थ सहित), ५४. बालबोध पाठमाला भाग-२, ५५. बालबोध पाठमाला भाग-३, ५६. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-१, ५७. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-२, ५८. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-३, ५९. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१, ६०. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-२

समयसार

(पद्यानुवाद)

रंगभूमि एवं जीव-अजीव अधिकार

ध्रुव अचल अनुपम सिद्ध की कर वंदना मैं स्व-परहित ।
यह समयप्राभृत कह रहा श्रुतकेवली द्वारा कथित ॥ १ ॥

सद्ज्ञानदर्शनचरित परिणत जीव ही हैं स्वसमय ।
जो कर्मपुद्गल के प्रदेशों में रहें वे परसमय ॥ २ ॥

एकत्वनिश्चयगत समय सर्वत्र सुन्दर लोक में ।
विसंवाद है पर बंध की यह कथा ही एकत्व में ॥ ३ ॥

सब की सुनी अनुभूत परिचित भोग बंधन की कथा ।
पर से पृथक् एकत्व की उपलब्धि केवल सुलभ ना ॥ ४ ॥

निज विभव से एकत्व ही दिखला रहा करना मनन ।
पर नहीं करना छलग्रहण यदि हो कहीं कुछ स्खलन ॥ ५ ॥

न अप्रमत्त है न प्रमत्त है बस एक ज्ञायकभाव है ।
इस भाँति कहते शुद्ध पर जो ज्ञात वह तो वही है ॥ ६ ॥

दृग ज्ञान चारित जीव के हैं – यह कहा व्यवहार से ।
ना ज्ञान दर्शन चरण ज्ञायक शुद्ध है परमार्थ से ॥ ७ ॥

अनार्य भाषा के बिना समझा सके न अनार्य को ।
बस त्योंहि समझा सके ना व्यवहार बिन परमार्थ को ॥ ८ ॥

श्रुतज्ञान से जो जानते हैं शुद्ध केवल आतमा ।
श्रुतकेवली उनको कहें ऋषिगण प्रकाशक लोक के ॥ ९ ॥

जो सर्वश्रुत को जानते उनको कहें श्रुतकेतवली ।
सब ज्ञान ही है आतमा बस इसलिए श्रुतकेवली ॥ १० ॥

शुद्धनय भूतार्थ है अभूतार्थ है व्यवहारनय ।
भूतार्थ की ही शरण गह यह आतमा सम्यक् लहे ॥ ११ ॥

परमभाव को जो प्राप्त हैं वे शुद्धनय ज्ञातव्य हैं ।
जो रहें अपरमभाव में व्यवहार से उपदिष्ट हैं ॥ १२ ॥

चिदचिदास्त्रव पाप-पुण्य शिव बंध संवर निर्जरा ।
तत्त्वार्थ ये भूतार्थ से जाने हुए सम्यक्त्व हैं ॥ १३ ॥

अबद्धपुट्ठ अनन्य नियत अविशेष जाने आत्म को ।
संयोग विरहित भी कहे जो शुद्धनय उसको कहें ॥ १४ ॥

अबद्धपुट्ठ अनन्य अरु अविशेष जाने आत्म को ।
अपदेश एवं शान्त वह सम्पूर्ण जिनशासन लहे ॥ १५ ॥

चारित्र दर्शन ज्ञान को सब साधुजन सेवें सदा ।
ये तीन ही हैं आतमा बस कहे निश्चयनय सदा ॥ १६ ॥

'यह नृपति है' – यह जानकर अर्थार्थिजन श्रद्धा करें ।
अनुचरण उसका ही करें अति प्रीति से सेवा करें ॥ १७ ॥

यदि मोक्ष की है कामना तो जीवनृप को जानिए ।
अति प्रीति से अनुचरण करिए प्रीति से पहिचानिए ॥ १८ ॥

मैं कर्म हूँ नोकर्म हूँ या हैं हमारे ये सभी ।
यह मान्यता जबतक रहे अज्ञानि हैं तबतक सभी ॥ १९ ॥

सचित्त और अचित्त एवं मिश्र सब पर द्रव्य ये ।
हैं मेरे ये मैं इनका हूँ यें मैं हूँ या मैं हूँ वे ही ॥ २० ॥

हम थे सभी के या हमारे थे सभी गत काल में ।
हम होंयगे उनके हमारे वे अनागत काल में ॥ २१ ॥

ऐसी असंभव कल्पनाएँ मूढ़जन नित ही करें ।
भूतार्थ जाननहार जन ऐसे विकल्प नहीं करें ॥ २२ ॥

अज्ञान-मोहित-मती बहुविध भाव से संयुक्त जिय ।
अबद्ध एवं बद्ध पुद्गल द्रव्य को अपना कहें ॥ २३ ॥

सर्वज्ञ ने देखा सदा उपयोग लक्षण जीव यह ।
पुद्गलमयी हो किसतरह किसतरह तू अपना कहे ? ॥ २४ ॥

जीवमय पुद्गल तथा पुद्गलमयी हो जीव जब ।
ये मेरे पुद्गल द्रव्य हैं – यह कहा जा सकता है तब ॥ १५ ॥

यदि देह ना हो जीव तो तीर्थंकरों का स्तवन ।
सब असत् होगा इसलिए बस देह ही है आतमा ॥ २६ ॥

'देह–चेतन एक हैं' – यह वचन है व्यवहार का ।
'ये एक हो सकते नहीं' – यह कथन है परमार्थ का ॥ २७ ॥

इस आतमा से भिन्न पुद्गल रचित तन का स्तवन ।
कर मानना कि हो गया है केवली का स्तवन ॥ २८ ॥

परमार्थ से सत्यार्थ ना वह केवली का स्तवन ।
केवलि-गुणों का स्तवन ही केवली का स्तवन ॥ २९ ॥

वर्णन नहीं है नगरपति का नगर-वर्णन जिसतरह ।
केवली-वंदन नहीं है देह वंदन उसतरह ॥ ३० ॥

जो इन्द्रियों को जीत जाने ज्ञानमय निज आतमा ।
वे हैं जितेन्द्रिय जिन कहें परमार्थ साधक आतमा ॥ ३१ ॥

मोह को जो जीत जाने ज्ञानमय निज आतमा ।
जितमोह जिन उनको कहें परमार्थ ज्ञायक आतमा ॥ ३२ ॥

सब मोह क्षय हो जाय जब जितमोह सम्यक्श्रमण का ।
तब क्षीणमोही जिन कहें परमार्थ ज्ञायक आतमा ॥ ३३ ॥

परभाव को पर जानकर परित्याग उनका जब करे ।
तब त्याग हो बस इसलिए ही ज्ञान प्रत्याख्यान है ॥ ३४ ॥

जिस तरह कोई पुरुष पर को जानकर पर परित्यजे ।
बस उसतरह पर जानकर परभाव ज्ञानी परित्यजे ॥ ३५ ॥

मोहादि मेरे कुछ नहीं मैं एक हूँ उपयोगमय ।
है मोह-निर्ममता यही वे कहें जो जाने समय ॥ ३६ ॥

धर्मादि मेरे कुछ नहीं मैं एक हूँ उपयोगमय ।
है धर्म-निर्ममता यही वे कहें जो जाने समय ॥ ३७ ॥

मैं एक दर्शन-ज्ञानमय नित शुद्ध हूँ रूपी नहीं ।
ये अन्य सब परद्रव्य किंचित् मात्र भी मेरे नहीं ॥ ३८ ॥

परात्मवादी मूढ़जन निज आतमा जाने नहीं ।
अध्यवसान को आतम कहें या कर्म को आतम कहें ॥ ३९ ॥

अध्यवसानगत जो तीव्रता या मंदता वह जीव है ।
पर अन्य कोई यह कहे नोकर्म ही बस जीव है ॥४० ॥

मन्द अथवा तीव्रतम जो कर्म का अनुभाग है ।
वह जीव है या कर्म का जो उदय है वह जीव है॥४१ ॥

द्रव कर्म का अर जीव का सम्मिलन ही बस जीव है ।
अथवा कहे कोइ करम का संयोग ही बस जीव है ॥ ४२ ॥

बस इस तरह दुर्बुद्धिजन परवस्तु को आतम कहें ।
परमार्थवादी वे नहीं परमार्थवादी यह कहें ॥ ४३ ॥

ये भाव सब पुद्गल दरव परिणाम से निष्पन्न हैं ।
यह कहा है जिनदेव ने 'ये जीव हैं' – कैसे कहें ? ॥ ४४ ॥

अष्टविध सब कर्म पुद्गलमय कहे जिनदेव ने ।
सब कर्म का परिणाम दुःखमय यह कहा जिनदेव ने ॥ ४५ ॥

ये भाव सब हैं जीव के जो यह कहा जिनदेव ने ।
व्यवहारनय का पक्ष यह प्रस्तुत किया जिनदेव ने ॥ ४६ ॥

सेना सहित नरपती निकले नृप चला ज्यों जन कहें ।
यह कथन है व्यवहार का पर नृपति उनमें एक है ॥ ४७ ॥

बस उसतरह ही सूत्र में व्यवहार से इन सभी को ।
जीव कहते किन्तु इनमें जीव तो बस एक है ॥ ४८ ॥

चैतन्य गुणमय आतमा अव्यक्त अरस अरूप है ।
जानो अलिंगग्रहण इसे यह अनिर्दिष्ट अशब्द है ॥ ४९ ॥

शुध जीव के रस गंध ना अर वर्ण ना स्पर्श ना ।
यह देह ना जड़रूप ना संस्थान ना संहनन ना ॥ ५० ॥

ना राग है ना द्वेष है ना मोह है इस जीव के ।
प्रत्यय नहीं है कर्म ना नोकर्म ना इस जीव के ॥ ५१ ॥

ना वर्ग है ना वर्गणा अर कोई स्पर्धक नहीं ।
अर नहीं हैं अनुभाग के अध्यात्म के स्थान भी ॥ ५२ ॥

योग के स्थान नहिं अर बंध के स्थान ना ।
उदय के स्थान नहिं अर मार्गणा स्थान ना ॥ ५३ ॥

थिति बंध के स्थान नहिं संक्लेश के स्थान ना।
संयमलब्धि के स्थान ना सुविशुद्धि के स्थान ना ॥ ५४ ॥

जीव के स्थान नहिं गुणथान के स्थान ना।
क्योंकि ये सब भाव पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं ॥ ५५ ॥

वर्णादि को व्यवहार से ही कहा जाता जीव के।
परमार्थ से ये भाव भी होते नहीं हैं जीव के ॥ ५६ ॥

दूध-पानी की तरह सम्बन्ध इनका जानना।
उपयोगमय इस जीव के परमार्थ से ये हैं नहीं ॥ ५७ ॥

पथिक लुटते देखकर पथ लुट रहा जग-जन कहें।
पर पथ तो लुटता है नहीं बस पथिक ही लुटते रहें ॥ ५८ ॥

उस ही तरह रंग देखकर जड़ कर्म अर नोकर्म का ।
जिनवर कहें व्यवहार से यह वर्ण है इस जीव का ॥ ५९ ॥

इस ही तरह रस गंध तन संस्थान आदिक जीव के ।
व्यवहार से हैं – कहें वे जो जानते परमार्थ को ॥ ६० ॥

जो जीव हैं संसार में वर्णादि उनके ही कहे ।
जो मुक्त हैं संसार से वर्णादि उनके हैं नहीं ॥ ६१ ॥

वर्णादिमय ही जीव हैं तुम यदी मानो इसतरह ।
तब जीव और अजीव में अन्तर करोगे किसतरह ? ॥ ६२ ॥

मानो उन्हें वर्णादिमय जो जीव हैं संसार में ।
तब जीव संसारी सभी वर्णादिमय हो जायेंगे ॥ ६३ ॥

यदि लक्षणों की एकता से जीव हों पुद्गल सभी ।
बस इसतरह तो सिद्ध होंगे सिद्ध भी पुद्गलमयी ॥ ६४ ॥

एकेन्द्रियादिक प्रकृति हैं जो नाम नामक कर्म की ।
पर्याप्तकेतर आदि एवं सूक्ष्म-वादर आदि सब ॥ ६५ ॥

इनकी अपेक्षा कहे जाते जीव के स्थान जो ।
कैसे कहें – 'वे जीव हैं'– जब प्रकृतियाँ पुद्गलमयी ॥ ६६ ॥

पर्याप्तकेतर आदि एवं सूक्ष्म वादर आदि सब ।
जड़ देह की है जीव संज्ञा सूत्र में व्यवहार से ॥ ६७ ॥

मोहन-करम के उदय से गुणथान जो जिनवर कहे ।
वे जीव कैसे हो सकें जो नित अचेतन ही कहें ? ॥ ६८ ॥

कर्ताकर्म अधिकार

आतमा अर आस्त्रवों में भेद जब जाने नहीं ।
हैं अज्ञ तबतक जीव सब क्रोधादि में वर्तन करें ॥ ६९ ॥

क्रोधादि में वर्तन करें तब कर्म का संचय करें ।
हो कर्मबंधन इसतरह इस जीव को जिनवर कहें ॥ ७० ॥

आतमा अर आस्त्रवों में भेद जाने जीव जब ।
जिनदेव ने ऐसा कहा कि नहीं होवे बंध तब ॥ ७१ ॥

इन आस्त्रवों की अशुचिता विपरीतता को जानकर ।
आतम करे उनसे निवर्तन दुःख कारण मानकर ॥ ७२ ॥

मैं एक हूँ मैं शुद्ध निर्मम ज्ञान दर्शन पूर्ण हूँ ।
थित लीन निज में ही रहूँ सब आस्त्रवों का क्षय करूँ ॥ ७३ ॥

ये सभी जीवनिबद्ध अध्रुव शरणहीन अनित्य हैं ।
दुःखरूप दुखफल जानकर इनसे निवर्तन बुध करें ॥ ७४ ॥

करम के परिणाम को नोकरम के परिणाम को ।
जो ना करे बस मात्र जाने प्राप्त हों सद्ज्ञान को ॥ ७५ ॥

परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमें ।
बहुभाँति पुद्गल कर्म को ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥ ७६ ॥

परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमें ।
बहुभाँति निज परिणाम सब ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥ ७७ ॥

परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमें ।
पुद्गल करम का नंतफल ज्ञानी पुरुष जाना करें ॥ ७८ ॥

परद्रव्य की पर्याय में उपजे ग्रहे ना परिणमें ।
इस ही तरह पुद्गल दरव निजभाव से ही परिणमें ॥ ७९ ॥

जीव के परिणाम से जड़कर्म पुद्गल परिणमें ।
पुद्गल करम के निमित से यह आतमा भी परिणमें ॥ ८० ॥

आतम करे ना कर्मगुण ना कर्म आतमगुण करे ।
पर परस्पर परिणमन में दोनों परस्पर निमित हैं ॥ ८१ ॥

बस इसलिए यह आतमा निजभाव का कर्ता कहा ।
अन्य सब पुद्गलकरमकृत भाव का कर्ता नहीं ॥ ८२ ॥

हे भव्यजन! तुम जान लो परमार्थ से यह आतमा ।
निजभाव को करता तथा निजभाव को ही भोगता ॥ ८३ ॥

अनेक विध पुद्गल करम को करे भोगे आतमा ।
व्यवहारनय का कथन है यह जान लो भव्यात्मा ॥ ८४ ॥

पुद्गल करम को करे भोगे जगत में यदि आतमा ।
द्विक्रिया अव्यतिरिक्त हों संमत न जो जिनधर्म में ॥ ८५ ॥

यदि आतमा जड़भाव चेतनभाव दोनों को करे ।
तो आतमा द्विक्रियावादी मिथ्यादृष्टि अवतरे ॥ ८६ ॥

मिथ्यात्व-अविरति-जोग-मोहाज्ञान और कषाय हैं ।
ये सभी जीवाजीव हैं ये सभी द्विविधप्रकार हैं ॥ ८७ ॥

मिथ्यात्व आदि अजीव जो वे सभी पुद्गल कर्म हैं ।
मिथ्यात्व आदि जीव हैं जो वे सभी उपयोग हैं ॥ ८८ ॥

मोहयुत उपयोग के परिणाम तीन अनादि से ।
जानों उन्हें मिथ्यात्व अविरतभाव अर अज्ञान ये ॥ ८९ ॥

यद्यपी उपयोग तो नित ही निरंजन शुद्ध है ।
जिसरूप परिणत हो त्रिविध वह उसी का कर्ता बने ॥ ९० ॥

आतम करे जिस भाव को उस भाव का कर्ता बने ।
बस स्वयं ही उस समय पुद्गल कर्मभावे परिणमें ॥ ९१ ॥

पर को करे निजरूप जो पररूप जो निज को करे ।
अज्ञानमय वह आतमा पर करम का कर्ता बने ॥ ९२ ॥

पररूप ना निज को करे पर को करे निज रूप ना ।
अकर्ता रहे पर करम का सद्ज्ञानमय वह आतमा ॥ ९३ ॥

त्रिविध यह उपयोग जब 'मैं क्रोध हूँ' इम परिणामें ।
तब जीव उस उपयोगमय परिणाम का कर्ता बने ॥ ९४ ॥

त्रिविध यह उपयोग जब 'मैं धर्म हूँ' इम परिणामें ।
तब जीव उस उपयोगमय परिणाम का कर्ता बने ॥ ९५ ॥

इसतरह यह मंदबुद्धि स्वयं के अज्ञान से ।
निज द्रव्य को पर करे अरु परद्रव्य को अपना करे ॥ ९६ ॥

बस इसतरह कर्ता कहें परमार्थ ज्ञायक आतमा ।
जो जानते यह तथ्य वे छोड़ें सकल कर्तापना ॥ ९७ ॥

व्यवहार से यह आतमा घटपटरथादिक द्रव्य का ।
इन्द्रियों का कर्म का नोकर्म का कर्ता कहा ॥ ९८ ॥

परद्रव्यमय हो जाय यदि पर द्रव्य में कुछ भी करे ।
परद्रव्यमय होता नहीं बस इसलिए कर्ता नहीं ॥ ९९ ॥

ना घट करे ना पट करे ना अन्य द्रव्यों को करे ।
कर्ता कहा तत्रूपपरिणत योग अर उपयोग का ॥१००॥

ज्ञानावरण आदिक जु पुद्गल द्रव्य के परिणाम हैं ।
उनको करे ना आतमा जो जानते वे ज्ञानि हैं ॥१०१॥

निजकृत शुभाशुभभाव का कर्ता कहा है आतमा ।
वे भाव उसके कर्म हैं वेदक है उनका आतमा ॥१०२॥

जब संक्रमण ना करे कोई द्रव्य पर-गुण-द्रव्य में ।
तब करे कैसे परिणमन इक द्रव्य पर-गुण-द्रव्य में ॥१०३॥

कुछ भी करे ना जीव पुद्गल कर्म के गुण-द्रव्य में ।
जब उभय का कर्ता नहीं तब किसतरह कर्ता कहें ? ॥१०४॥

बंध का जो हेतु उस परिणाम को लख जीव में ।
करम कीने जीव ने बस कह दिया उपचार से ॥१०५॥

रण में लड़ें भट पर कहे जग युद्ध राजा ने किया ।
बस उसतरह द्रवकर्म आतम ने किए व्यवहार से ॥१०६॥

ग्रहे बाँधे परिणमावे करे या पैदा करे ।
पुद्गल दरव को आतमा व्यवहारनय का कथन है ॥१०७॥

गुण-दोष उत्पादक कहा ज्यों भूप को व्यवहार से ।
त्यों जीव पुद्गल द्रव्य का कर्ता कहा व्यवहार से ॥१०८॥

मिथ्यात्व अरु अविरमण योग कषाय के परिणाम हैं ।
सामान्य से ये चार प्रत्यय कर्म के कर्ता कहे ॥१०९॥

मिथ्यात्व आदि सयोगि-जिन तक जो कहे गुणथान हैं ।
बस ये त्रयोदश भेद प्रत्यय के कहे जिनसूत्र में ॥११०॥

पुद्गल करम के उदय से उत्पन्न ये सब अचेतन ।
करम के कर्ता हैं ये बेदक नहीं है आतमा ॥१११॥

गुण नाम के ये सभी प्रत्यय कर्म के कर्ता कहे ।
कर्ता रहा ना जीव ये गुणथान ही कर्ता रहे ॥११२॥

उपयोग जीव अनन्य ज्यों यदि त्यों हि क्रोध अनन्य हो ।
तो जीव और अजीव दोनों एक ही हो जायेंगे ॥११३॥

यदि जीव और अजीव दोनों एक हों तो इसतरह ।
का दोष प्रत्यय कर्म अर नोकर्म में भी आयगा ॥११४॥

क्रोधान्य है अर अन्य है उपयोगमय यह आतमा ।
तो कर्म अरु नोकर्म प्रत्यय अन्य होंगे क्यों नहीं ? ॥११५॥

यदि स्वयं ही कर्मभाव से परिणत न हो ना बंधे ही ।
तो अपरिणामी सिद्ध होगा कर्ममय पुद्गल दरव ॥११६॥

कर्मत्व में यदि वर्गणाएँ परिणमित होंगी नहीं ।
तो सिद्ध होगा सांख्यमत संसार की हो नास्ति ॥११७॥

यदि परिणमावे जीव पुद्गल दरव को कर्मत्व में ।
पर परिणमावे किसतरह वह अपरिणामी वस्तु को ॥११८॥

यदि स्वयं ही परिणमें वे पुद्गल दरव कर्मत्व में ।
मिथ्या रही यह बात उनको परिणमावें आतमा ॥११८॥

जड़कर्म परिणत जिसतरह पुद्गल दरव ही कर्म है ।
जड़ज्ञान-आवरणादि परिणत ज्ञान-आवरणादि हैं ॥१२०॥

यदि स्वयं ही ना बंधे अर क्रोधादिमय परिणत न हो ।
तो अपरिणामी सिद्ध होगा जीव तेरे मत विषें ॥१२१॥

स्वयं ही क्रोधादि में यदि जीव ना हो परिणमित ।
तो सिद्ध होगा सांख्यमत संसार की हो नास्ति ॥१२२॥

यदि परिणमावे कर्मजड़ क्रोधादि में इस जीव को ।
पर परिणमावे किसतरह वह अपरिणामी वस्तु को ॥१२३॥

यदि स्वयं ही क्रोधादि में परिणमित हो यह आतमा ।
मिथ्या रही यह बात उसको परिणमावे कर्म जड़ ॥१२४॥

क्रोधोपयोगी क्रोध है मानोपयोगी मान है ।
मायोपयोगी माया है लोभोपयोगी लोभ है ॥१२५॥

जो भाव आतम करे वह उस कर्म का कर्ता बने ।
ज्ञानियों के ज्ञानमय अज्ञानि के अज्ञानमय ॥१२६॥

अज्ञानमय हैं भाव इससे अज्ञ कर्ता कर्म का ।
बस ज्ञानमय हैं इसलिए ना विज्ञ कर्ता कर्म का ॥१२७॥

ज्ञानमय परिणाम से परिणाम हों सब ज्ञानमय ।
बस इसलिए सद्ज्ञानियों के भाव हों सद्ज्ञानमय ॥१२८॥

अज्ञानमय परिणाम से परिणाम हों अज्ञानमय ।
बस इसलिए अज्ञानियों के भाव हों अज्ञानमय ॥१२९॥

स्वर्णनिर्मित कुण्डलादि स्वर्णमय ही हों सदा ।
लोहनिर्मित कटक आदि लोहमय ही हों सदा ॥१३०॥

इस ही तरह अज्ञानियों के भाव हों अज्ञानमय ।
इस ही तरह सब भाव हों सद्ज्ञानियों के ज्ञानमय ॥१३१॥

निजतत्त्व का अज्ञान ही बस उदय है अज्ञान का ।
निजतत्त्व का अश्रद्धान ही बस उदय है मिथ्यात्व का ॥१३२॥

अविरमण का सद्भाव ही बस असंयम का उदय है ।
उपयोग की यह कलुषिता ही कषायों का उदय है ॥१३३॥

शुभ अशुभ चेष्टा में तथा निवृत्ति में या प्रवृत्ति में ।
जो चित्त का उत्साह है वह ही उदय है योग का ॥१३४॥

इनके निमित के योग से जड़ वर्गणाएँ कर्म की ।
परिणमित हों ज्ञान-आवरणादि बसुविध कर्म में ॥१३५॥

इस तरह बसुविध कर्म से आवद्ध जिय जब हो तभी ।
अज्ञानमय निजभाव का हो हेतु जिय जिनवर कही ॥१३६॥

यदि कर्ममय परिणाम पुद्गल द्रव्य का जिय साथ हो ।
तो जीव भी जड़कर्मवत् कर्मत्व को ही प्राप्त हो ॥१३७॥

किन्तु जब जियभाव बिन ही एक पुद्गल द्रव्य का ।
यह कर्ममय परिणाम है तो जीव जड़मय क्यों बने ? ॥१३८॥

इस जीव के रागादि पुद्गलकर्म में भी हों यदी ।
तो जीववत जड़कर्म भी रागादिमय हो जावेंगे ॥१३९॥

किन्तु जब जड़कर्म बिन ही जीव के रागादि हों ।
तब कर्मजड़ पुद्गलमयी रागादिमय कैसे बनें ? ॥१४०॥

कर्म से आबद्ध जिय यह कथन है व्यवहार का ।
पर कर्म से ना बद्ध जिय यह कथन है परमार्थ का ॥१४१॥

अबद्ध है या बद्ध है जिय यह सभी नयपक्ष हैं ।
नयपक्ष से अतिक्रान्त जो वह ही समय का सार है ॥१४२॥

दोनों नयों को जानते पर ना ग्रहे नयपक्ष जो ।
नयपक्ष से परिहीन पर निज समय से प्रतिबद्ध वे ॥१४३॥

विरहित सभी नयपक्ष से जो सो समय का सार है ।
है वही सम्यग्ज्ञान एवं वही समकित सार है ॥१४४॥

———•———

पुण्य-पाप अधिकार

सुशील है शुभ कर्म और अशुभ करम कुशील है ।
संसार के हैं हेतु वे कैसे कहें कि सुशील हैं ? ॥१४५॥

ज्यों लोह बेड़ी बाँधती त्यों स्वर्ण की भी बाँधती ।
इस भाँति ही शुभ-अशुभ दोनों कर्म बेड़ी बाँधती ॥१४६॥

दुःशील के संसर्ग से स्वाधीनता का नाश हो ।
दुःशील से संसर्ग एवं राग को तुम मत करो ॥१४७॥

जगतजन जिसतरह कुत्सितशील जन को जानकर ।
उस पुरुष से संसर्ग एवं राग करना त्यागते ॥१४८॥

बस उसतरह ही कर्म कुत्सित शील हैं – यह जानकर ।
निजभावरत जन कर्म से संसर्ग को हैं त्यागते ॥१४९॥

विरक्त शिव रमणी वरें अनुरक्त बांधे कर्म को ।
जिनदेव का उपदेश यह मत कर्म में अनुरक्त हो ॥१५०॥

परमार्थ है है ज्ञानमय है समय शुध मुनि केवली ।
इसमें रहें थिर अचल जो निर्वाण पावें वे मुनी ॥१५१॥

परमार्थ से हों दूर पर तप करें व्रत धारण करें ।
सब बालतप हैं बालव्रत वृषभादि सब जिनवर कहें ॥१५२॥

व्रत नियम सब धारण करें तप शील भी पालन करें ।
पर दूर हों परमार्थ से ना मुक्ति की प्राप्ति करें ॥१५३॥

परमार्थ से हैं बाह्य वे जो मोक्षमग नहीं जानते ।
अज्ञान से भवगमन-कारण पुण्य को हैं चाहते ॥१५४॥

जीवादि का श्रद्धान सम्यक् ज्ञान सम्यग्ज्ञान है ।
रागादि का परिहार चारित – यही मुक्तिमार्ग है ॥१५५॥

विद्वानगण भूतार्थ तज वर्तन करें व्यवहार में ।
पर कर्मक्षय तो कहा है परमार्थ-आश्रित संत के ॥१५६॥

ज्यों श्वेतपन हो नष्ट पट का मैल के संयोग से ।
सम्यक्त्व भी त्यों नष्ट हो मिथ्यात्व मल के लेप से ॥१५७॥

ज्यों श्वेतपन हो नष्ट पट का मैल के संयोग से ।
सद्ज्ञान भी त्यों नष्ट हो अज्ञान मल के लेप से ॥१५८॥

ज्यों श्वेतपन हो नष्ट पट का मैल के संयोग से ।
चारित्र भी त्यों नष्ट होय कषायमल के लेप से ॥१५९॥

सर्वदर्शी सर्वज्ञानी कर्मरज आछन्न हो ।
संसार को सम्प्राप्त कर सबको न जाने सर्वतः ॥१६०॥

सम्यक्त्व प्रतिबन्धक करम मिथ्यात्व जिनवर ने कहा ।
उसके उदय से जीव मिथ्यादृष्टि होता है सदा ॥१६१॥

सद्ज्ञान प्रतिबन्धक करम अज्ञान जिनवर ने कहा ।
उसके उदय से जीव अज्ञानी बने – यह जानना ॥१६२॥

चारित्र प्रतिबन्धक करम जिन ने कषायों को कहा ।
उसके उदय से जीव चारित्रहीन हो यह जानना ॥१६३॥

आस्रव अधिकार

मिथ्यात्व अविरत योग और कषाय चेतन-अचेतन ।
चितरूप जो हैं वे सभी चैतन्य के परिणाम हैं ॥१६४॥

ज्ञानावरण आदिक अचेतन कर्म के कारण बने ।
उनका भी तो कारण बने रागादि कारक जीव यह ॥१६५॥

है नहीं आस्रव बंध क्योंकि आस्रवों का रोध है ।
सद्दृष्टि उनको जानता जो कर्म पूर्वनिबद्ध हैं ॥१६६॥

जीवकृत रागादि ही बंधक कहे हैं सूत्र में ।
रागादि से जो रहित वह ज्ञायक अबंधक जानना ॥१६७॥

पक्वफल जिसतरह गिरकर नहीं जुड़ता वृक्ष से ।
बस उसतरह ही कर्म खिरकर नहीं जुड़ते जीव से ॥१६८॥

जो बंधे थे भूत में वे कर्म पृथ्वीपिण्ड सम ।
वे सभी कर्म शरीर से हैं बद्ध सम्यग्ज्ञानि के ॥१६८॥

प्रतिसमय विध-विध कर्म को सब ज्ञान-दर्शन गुणों से ।
बाँधे चतुर्विध प्रत्यय ही ज्ञानी अबंधक इसलिए ॥१७०॥

ज्ञानगुण का परिणमन जब हो जघन्यहि रूप में ।
अन्यत्व में परिणमे तब इसलिए ही बंधक कहा ॥१७१॥

ज्ञान–दर्शन–चरित गुण जब जघनभाव से परिणमे ।
तब विविध पुद्गल कर्म से इसलोक में ज्ञानी बंधे ।।१७२।।

सद्दृष्टियों के पूर्वबद्ध जो कर्मप्रत्यय सत्व में ।
उपयोग के अनुसार वे ही कर्म का बंधन करें ।।१७३।।

अनभोग्य हो उपभोग्य हों वे सभी प्रत्यय जिसतरह ।
ज्ञान-आवरणादि बसुविध कर्म बाँधे उसतरह ।।१७४।।

बालबनिता की तरह वे सत्व में अनभोग्य हैं ।
पर तरुणवनिता की तरह उपभोग्य होकर बाँधते ।।१७५।।

बस इसलिए सद्दृष्टियों को अबंधक जिन ने कहा ।
क्योंकि आस्त्रवभाव बिन प्रत्यय न बंधन कर सके ।।१७६।।

रागादि आस्त्रवभाव जो सद्दृष्टियों के वे नहीं ।
इसलिए आस्त्रवभाव बिन प्रत्यय न हेतु बंध के ॥१७७॥

अष्टविध कर्मों के कारण चार प्रत्यय ही कहे ।
रागादि उनके हेतु हैं उनके बिना बंधन नहीं ॥१७८॥

जगजन ग्रसित आहार ज्यों जठराग्नि के संयोग से ।
परिणमित होता बसा में मज्जा रुधिर मांसादि में ॥१७९॥

शुद्धनय परिहीन ज्ञानी के बंधे जो पूर्व में ।
वे कर्म प्रत्यय ही जगत में बांधते हैं कर्म को ॥१८०॥

———•———

संवर अधिकार

उपयोग में उपयोग है क्रोधादि में उपयोग ना ।
बस क्रोध में है क्रोध पर उपयोग में है क्रोध ना ॥१८१॥

अष्टविध द्रवकर्म में नोकर्म में उपयोग ना ।
इस ही तरह उपयोग में भी कर्म ना नोकर्म ना ॥१८२॥

विपरीतता से रहित इस विधि जीव को जब ज्ञान हो ।
उपयोग के अतिरिक्त कुछ भी ना करे तब आतमा ॥१८३॥

ज्यों अग्नि से संतप्त सोना स्वर्णभाव नहीं तजे ।
त्यों कर्म से संतप्त ज्ञानी ज्ञानभाव नहीं तजे ॥१८४॥

जानता यह ज्ञानि पर अज्ञानतम आछन्न जो ।
वे आतमा जाने न माने राग को ही आतमा ॥१८५॥

जो जानता मैं शुद्ध हूँ वह शुद्धता को प्राप्त हो ।
जो जानता अविशुद्ध वह अविशुद्धता को प्राप्त हो ॥१८६॥

पुण्य एवं पाप से निज आतमा को रोककर ।
अन्य आशा से विरत हो ज्ञान-दर्शन में रहें ॥१८७॥

विरहित करम नोकरम से निज आत्म के एकत्व को ।
निज आतमा को स्वयं ध्यावें सर्व संग विमुक्त हो ॥१८८॥

ज्ञान-दर्शन मय निजातम को सदा जो ध्यावते ।
अत्यल्पकाल स्वकाल में वे सर्व कर्म विमुक्त हों ॥१८९॥

बंध के कारण कहे हैं भाव अध्यवसान ही ।
मिथ्यात्व अर अज्ञान अविरत-भाव एवं योग भी ॥१९०॥

इनके बिना है आस्त्रवों का रोध सम्यग्ज्ञानि के ।
अर आस्त्रवों के रोध से ही कर्म का भी रोध है ॥१९१॥

कर्म के अवरोध से नोकर्म का अवरोध हो ।
नोकर्म के अवरोध से संसार का अवरोध हो ॥१९२॥

निर्जरा अधिकार

चेतन अचेतन द्रव्य का उपभोग सम्यग्दृष्टि जन ।
जो इन्द्रियों से करें वह सब निर्जरा का हेतु है ॥१९३॥

सुख-दुख नियम से हों सदा परद्रव्य के उपभोग से ।
अर भोगने के बाद सुख-दुख निर्जरा को प्राप्त हों ॥१९४॥

ज्यों वैद्यजन मरते नहीं हैं जहर के उपभोग से ।
त्यों ज्ञानिजन बंधते नहीं हैं कर्म के उपभोग से ॥१९५॥

ज्यों अरुचिपूर्वक मद्य पीकर मत्त जन होते नहीं ।
त्यों अरुचि से उपभोग करते ज्ञानिजन बँधते नहीं ॥१९६॥

ज्यों प्रकरणगत चेष्टा करें पर प्राकरणिक नहीं बनें ।
त्यों ज्ञानिजन सेवन करें पर विषय के सेवक नहीं ॥१९७॥

उदय कर्मों के विविध-विध सूत्र में जिनवर कहे ।
किन्तु वे मेरे नहीं मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ॥१९८॥

पुद्गल करम है राग उसके उदय ये परिणाम हैं ।
किन्तु ये मेरे नहीं मैं एक ज्ञायकभाव हूँ ॥१९९॥

इसतरह ज्ञानी जानते ज्ञायकस्वाभावी आतमा ।
कर्मोदयों को छोड़ते निजतत्त्व को पहिचान कर ॥२००॥

अणुमात्र भी रागादि का सद्भाव है जिस जीव के ।
वह भले ही हो सर्व आगमधर न जाने जीव को ॥२०१॥

जो न जाने जीव को वे अजीव भी जाने नहीं ।
कैसे कहें सद्दृष्टि जीवाजीव जब जाने नहीं ? ॥२०२॥

स्वानुभूतिगम्य है जो नियत थिर निज़भाव ही ।
अपद पद सब छोड़ ग्रह वह एक नित्यस्वभाव ही ॥२०३॥

मतिश्रुतावधिमन:पर्यय और केवलज्ञान भी ।
सब एक पद परमार्थ हैं पा इसे जन शिवपद लहें ॥२०४॥

इस ज्ञानगुण के बिना जन प्राप्ती न शिवपद की करें ।
यदि चाहते हो मुक्त होना ज्ञान का आश्रय करो ॥२०५॥

इस ज्ञान में ही रत रहो सन्तुष्ट नित इसमें रहो ।
बस तृप्त भी इसमें रहो तो परममुख को प्राप्त हो ॥२०६॥

आतमा ही आतमा का परीग्रह – यह जानकर ।
'पर द्रव्य मेरा है' – बताओ कौन बुध ऐसा कहे ? ॥२०७॥

यदि परीग्रह मेरा बने तो मैं अजीव बनूँ अरे ।
पर मैं तो ज्ञायकभाव हूँ इसलिए पर मेरे नहीं ॥२०८॥

छिद जाय या ले जाय कोइ अथवा प्रलय को प्राप्त हो ।
जावे चला चाहे जहाँ पर परीग्रह मेरा नहीं ॥२०९॥

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे धर्म को ।
है परीग्रह ना धर्म का वह धर्म का ज्ञायक रहे ॥२१०॥

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे अधर्म को ।
है परिग्रह न अधर्म का वह अधर्म का ज्ञायक रहे ॥२११॥

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे असन को ।
है परिग्रह ना असन का वह असन का ज्ञायक रहे ॥२१२॥

है अनिच्छुक अपरिग्रही ज्ञानी न चाहे पेय को ।
है परिग्रह ना पेय का वह पेय का ज्ञायक रहे ॥२१३॥

इत्यादि विध-विध भाव जो ज्ञानी न चाहे सभी को ।
सर्वत्र ही वह निरालम्बी नियत ज्ञायकभाव है ॥२१४॥

उदयगत जो भोग हैं उनमें वियोगीबुद्धि है ।
अर अनागत भोग की सद्ज्ञानि के कांक्षा नहीं ॥२१५॥

वेद्य-वेदक भाव दोनों नष्ट होते प्रतिसमय ।
ज्ञानी रहे ज्ञायक सदा ना उभय की कांक्षा करें ॥२१६॥

बंध-भोग-निमित्त में अर देह में संसार में ।
सद्ज्ञानियों को राग होता नहीं अध्यवसान में ॥२१७॥

पंकगत ज्यों कनक निर्मल कर्मगत त्यों ज्ञानिजन ।
राग विरहित कर्मरज से लिप्त होते हैं नहीं ॥२१८॥

पंकगत ज्यों लोह त्यों ही कर्मगत अज्ञानिजन ।
रक्त हों परद्रव्य में अर कर्मरज से लिप्त हों ॥२१९॥

ज्यों अचित्त और सचित्त एवं मिश्र वस्तु भोगते ।
भी संख के शुक्लत्व को ना कृष्ण कोई कर सके ॥२२०॥

त्यों अचित्त और सचित्त एवं मिश्र वस्तु भोगते ।
भी ज्ञानि के ना ज्ञान को अज्ञान कोई कर सके ॥२२१॥

जब स्वयं शुक्लत्व तज वह कृष्ण होकर परिणमे ।
तब स्वयं ही हो कृष्ण एवं शुक्ल भाव परित्यजे ॥२२२॥

इस ही तरह जब ज्ञानिजन निजभाव को परित्यागकर ।
अज्ञानमय हों परिणमित तब स्वयं अज्ञानी बनें ॥२२३॥

आजीविका के हेतु नर ज्यों नृपति की सेवा करे ।
तो नरपती भी सबतरह उसके लिए सुविधा करे ॥२२४॥

इस ही तरह जब जीव सुख के हेतु सेवे कर्मरज ।
तो कर्मरज भी सबतरह उसके लिए सुविधा करे ॥२२५॥

आजीविका के हेतु जब नर नृपति सेवा ना करे ।
तब नृपति भी उसके लिए उसतरह सुविधा न करे ॥२२६॥

त्यों कर्मरज सेवे नहीं जब जीव सुख के हेतु से ।
तो कर्मरज उसके लिए उसतरह सुविधा ना करे ॥२२७॥

नि:शंक हों सद्दृष्टि बस इसलिए ही निर्भय रहें ।
वे सप्त भय से मुक्त हैं इसलिए ही नि:शंक हैं ॥२२८॥

जो कर्मबंधन मोह कर्ता चार पाये छेदते ।
वे आतमा नि:शंक सम्यग्दृष्टि हैं – यह जानना ॥२२८॥

सब धर्म एवं कर्मफल की ना करें आकांक्षा ।
वे आतमा निकांक्ष सम्यग्दृष्टि हैं – यह जानना ॥२३०॥

जो नहीं करते जुगुप्सा सब वस्तु धर्मों के प्रति।
वे आतमा ही निर्जुगुप्सक समकिती हैं जानना ॥२३१॥

सर्व भावों के प्रति सद्दृष्टि हैं असंमूढ़ हैं ।
अमूढदृष्टी समकिती वे आतमा ही जानना ॥२३२॥

जो सिद्धभक्ति युक्त हैं सब धर्म का गोपन करें ।
वे आतमा गोपनकरी सद्दृष्टि हैं यह जानना ॥२३३॥

उन्मार्गगत निजभाव को लावें स्वयं सन्मार्ग में ।
वे आतमा थितिकरण सम्यग्दृष्टि हैं यह जानना ॥२३४॥

मुक्तिमगगत साधुत्रय प्रति रखें वत्सल भाव जो ।
वे आतमा वत्सली सम्यग्दृष्टि हैं यह जानना ॥२३५॥

सद्ज्ञानरथ आरूढ़ हो जो भ्रमे मनरथ मार्ग में ।
वे प्रभावक जिनमार्ग के सद्दृष्टि उनको जानना ॥२३६॥

बंध अधिकार

ज्यों तेल मर्दन कर पुरुष रेणु बहुल स्थान में ।
व्यायाम करता शस्त्र से बहुविध बहुत उत्साह से ॥२३७॥

तरु ताड़ कदली बाँस आदिक वनस्पति छेदन करे ।
सचित्त और अचित्त द्रव्यों का बहुत भेदन करे ॥२३८॥

बहुविध बहुत उपकरण से उपघात करते पुरुष को ।
परमार्थ से चिन्तन करो रजबंध किस कारण हुआ ॥२३९॥

चिकनाई ही रजबंध का कारण कहा जिनराज ने ।
पर कायचेष्टादिक नहीं यह जान लो परमार्थ से ॥२४०॥

बहुभाँति चेष्टारत तथा रागादि को करते हुए ।
सब करमरज से लिप्त होते हैं जगत में अज्ञजन ॥२४१॥

ज्यों तेल मर्दन रहित जन रेणू बहुल स्थान में ।
व्यायाम करता शस्त्र से बहुविध बहुत उत्साह से ॥२४२॥

तरु ताल कदली बाँस आदिक वनस्पति छेदन करे ।
सचित्त और अचित्त द्रव्यों का बहुत भेदन करे ॥२४३॥

बहुविध बहुत उपकरण से उपघात करते पुरुष को ।
परमार्थ से चिन्तन करो रजबंध क्यों कर ना हुआ ? ॥२४४॥

चिकनाई ही रजबंध का कारण कहा जिनराज ने ।
पर काय चेष्टादिक नहीं यह जान लो परमार्थ से ॥२४५॥

बहुभाँति चेष्टारत तथा रागादि ना करते हुए ।
बस करमरज से लिप्त होते नहीं जग में विज्ञजन ॥२४६॥

मैं मारता हूँ अन्य को या मुझे मारें अन्यजन ।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन ! ॥२४७॥

निज आयु क्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही ।
तुम मार कैसे सकोगे जब आयु हर सकते नहीं ? ॥२४८॥

निज आयुक्षय से मरण हो यह बात जिनवर ने कही ।
वे मरण कैसे करें तब जब आयु हर सकते नहीं ? ॥२४९॥

मैं हूँ बचाता अन्य को मुझको बचावे अन्यजन ।
यह मान्यता अज्ञान है जिनवर कहें हे भव्यजन ! ॥२५०॥

सब आयु से जीवित रहें–यह बात जिनवर ने कही ।
जीवित रखोगे किसतरह जब आयु दे सकते नहीं ? ॥२५१॥

सब आयु से जीवित रहें यह बात जिनवर ने कही ।
कैसे बचावें वे तुझे जब आयु दे सकते नहीं ? ॥२५२॥

मैं सुखी करता दुःखी करता हूँ जगत में अन्य को ।
यह मान्यता अज्ञान है क्यों ज्ञानियों को मान्य हो ? ॥२५३॥

हैं सुखी होते दुखी होते कर्म से सब जीव जब ।
तू कर्म दे सकता न जब सुख-दुःख दे किस भाँति तब ॥२५४॥

हैं सुखी होते दुखी होते कर्म से सब जीव जब ।
दुष्कर्म दे सकते न जब दुःख-दर्द दें किस भाँति तब ? ॥२५५॥

हैं सुखी होते दुखी होते कर्म से सब जीव जब ।
सत्कर्म दे सकते न जब सुख-शांति दें किस भाँति तब ? ॥२५६॥

जो मरे या जो दुखी हों वे सब करम के उदय से ।
'मैं दुखी करता-मारता' – यह बात क्यों मिथ्या न हो ? ॥२५७॥

जो ना मरे या दुखी ना हो सब करम के उदय से ।
'ना दुखी करता मारता' – यह बात क्यों मिथ्या न हो ? ॥२५८॥

मैं सुखी करता दुखी करता हूँ जगत में अन्य को ।
यह मान्यता ही मूढ़मति शुभ-अशुभ का बंधन करे ॥२५९॥

'मैं सुखी करता दुखी करता' यही अध्यवसान सब ।
पुण्य एवं पाप के बंधक कहे हैं सूत्र में ॥२६०॥

'मैं मारता मैं बचाता हूँ' यही अध्यवसान सब ।
पाप एवं पुण्य के बंधक कहे हैं सूत्र में ॥२६१॥

मारो न मारो जीव को हो बंध अध्यवसान से ।
यह बंध का संक्षेप है तुम जान लो परमार्थ से ॥२६२॥

इस ही तरह चोरी असत्य कुशील एवं ग्रंथ में ।
जो हुए अध्यवसान हों वे पाप का बंधन करें ॥२६३॥

इस ही तरह अचौर्य सत्य सुशील और अग्रन्थ में ।
जो हुए अध्यवसान हों वे पुण्य का बंधन करें ॥२६४॥

ये भाव अध्यवसान होते वस्तु के अवलम्ब से।
परवस्तु से ना बंध हो हो बंध अध्यवसान से ॥२६५॥

मैं सुखी करता दुखी करता बाँधता या छोड़ता।
यह मान्यता है मूढ़मति मिथ्या निरर्थक जानना ॥२६६॥

जिय बँधे अध्यवसान से शिवपथ-गमन से छूटते।
गहराई से सोचो जरा पर में तुम्हारा क्या चले? ॥२६७॥

यह जीव अध्यवसान से तिर्यंच नारक देव नर।
अर पुण्य एवं पाप सब पर्यायमय निज को करे ॥२६८॥

वह जीव और अजीव एवं धर्म और अधर्ममय।
अर लोक और अलोक इन सबमय स्वयं निज को करे ॥२६९॥

ये और इनसे अन्य अध्यवसान जिनके हैं नहीं ।
वे मुनीजन शुभ-अशुभ कर्मों से न कबहूँ लिप्त हों ॥२७०॥

व्यवसाय बुद्धी मती अध्यवसान अर विज्ञान भी ।
एकार्थवाचक हैं सभी ये भाव चित परिणाम भी ॥२७१॥

इस तरह ही परमार्थ से कर नास्ति इस व्यवहार की ।
निश्चयनयाश्रित श्रमणजन प्राप्ती करें निर्वाण की ॥२७२॥

व्रत-समिति-गुप्ती-शील-तप आदिक सभी जिनवरकथित ।
करते हुए भी अभव्यजन अज्ञानि मिथ्यादृष्टि हैं ॥२७३॥

मोक्ष के श्रद्धान बिन सब शास्त्र पढ़कर भी अभवि ।
को पाठ गुण करता नहीं है ज्ञान के श्रद्धान बिन ॥२७४॥

अभव्यजन श्रद्धा करें रुचि धरें अर रच-पच रहें ।
जो धर्म भोग निमित्त हैं न कर्मक्षय में निमित्त जो ॥२७५॥

जीवादि का श्रद्धान दर्शन शास्त्र-अध्ययन ज्ञान है ।
चारित्र है षट्काय रक्षा – यह कथन व्यवहार है ॥२७६॥

निज आतमा ही ज्ञान है दर्शन चरित भी आतमा ।
अर योग संवर और प्रत्याख्यान भी है आतमा ॥२७७॥

ज्यों लालिमामय स्वयं परिणत नहीं होता फटिकमणि ।
पर लालिमायुत द्रव्य के संयोग से हो लाल वह ॥२७८॥

त्यों ज्ञानिजन रागादिमय परिणत न होते स्वयं ही ।
रागादि के ही उदय से वे किए जाते रागमय ॥२७९॥

ना स्वयं करता मोह एवं राग-द्वेष-कषाय को ।
इसलिए ज्ञानी जीव कर्ता नहीं है रागादि का ॥२८०॥

राग-द्वेष-कषाय कर्मों के उदय में भाव जो ।
उनरूप परिणत जीव फिर रागादि का बंधन करे ॥२८१॥

राग-द्वेष-कषाय कर्मों के उदय में भाव जो ।
उनरूप परिणत आतमा रागादि का बंधन करे ॥२८२॥

है द्विविध अप्रतिक्रमण एवं द्विविध है अत्याग भी ।
इसलिए जिनदेव ने अकारक कहा है आतमा ॥२८३॥

अत्याग अप्रतिक्रमण दोनों द्विविध हैं द्रवभाव से ।
इसलिए जिनदेव ने अकारक कहा है आतमा ॥२८४॥

द्रवभाव से अत्याग अप्रतिक्रमण होवें जबतलक ।
तबतलक यह आतमा कर्ता रहे – यह जानना ॥२८५॥

अधःकर्मक आदि जो पुद्गल दरब के दोष हैं ।
परद्रव्य के गुणरूप उनको ज्ञानिजन कैसे करें ? ॥२८६॥

उद्देशिक अधःकर्म जो पुद्गल दरबमय अचेतन ।
कहे जाते वे सदा मेरे किये किस भाँति हों ? ॥२८७॥

———•———

मोक्ष अधिकार

कोई पुरुष चिरकाल से आबद्ध होकर बंध के ।
तीव्र-मन्दस्वभाव एवं काल को हो जानता ॥२८८॥

किन्तु यदि वह बंध का छेदन न कर छूटे नहीं ।
तो वह पुरुष चिरकाल तक निज मुक्ति को पाता नहीं ॥२८९॥

इस ही तरह प्रकृति प्रदेश स्थिति अर अनुभाग को ।
जानकर भी नहीं छूटे शुद्ध हो तब छूटता ॥२९०॥

चिन्तवन से बंध के ज्यों बंधे जन न मुक्त हों ।
त्यों चिन्तवन से बंध के सब बंधे जीव न मुक्त हों ॥२९१॥

छेदकर सब बंधनों को बद्धजन ज्यों मुक्त हों ।
त्यों छेदकर सब बंधनों को बद्धजिय सब मुक्त हों ॥२९२॥

जो जानकर निजभाव निज में और बंधस्वभाव को ।
विरक्त हों जो बंध से वे जीव कर्मविमुक्त हों ॥२९३॥

जीव एवं बंध निज-निज लक्षणों से भिन्न हो ।
दोनों पृथक हो जाय प्रज्ञाछैनि से जब छिन्न हों ॥२९४॥

जीव एवं बंध निज-निज लक्षणों से भिन्न हों ।
बंध को है छेदना अर ग्रहण करना आतमा ॥२९५॥

जिस भाँति प्रज्ञा छैनी से पर से विभक्त किया इसें ।
उस भाँति प्रज्ञा छैनी से ही अरे ग्रहण करो इसे ॥२९६॥

इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वहीं जो चेतता ।
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥२९७॥

इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो देखता ।
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥२९८॥

इस भाँति प्रज्ञा ग्रहे कि मैं हूँ वही जो जानता ।
अवशेष जो हैं भाव वे मेरे नहीं यह जानना ॥२९९॥

निज आतमा को शुद्ध अर पररूप पर को जानता ।
है कौन बुध जो जगत में परद्रव्य को अपना कहे ॥३००॥

अपराध चौर्यादिक करें जो पुरुष वे शंकित रहें ।
कि चोर है यह जानकर कोई मुझे ना बाँध ले ॥३०१॥

अपराध जो करता नहीं निःशंक जनपद में रहे ।
बंध जाऊँगा ऐसी कभी चिन्ता न उसके चित रहे ॥३०२॥

अपराधि जिय 'मैं बधूँगा' इसतरह नित शंकित रहे ।
पर निरपराधी आतमा भयरहित है निःशंक है ॥३०३॥

साधित अराधित राध अर संसिद्धि सिद्धि एक है ।
बस राध से जो रहित है वह आतमा अपराध है ॥३०४॥

निरपराध है जो आतमा वह आतमा निःशंक है ।
'मैं शुद्ध हूँ'— यह जानता आराधना में रत रहे ॥३०५॥

प्रतिक्रमण अर प्रतिसरण परिहार निवृत्ति धारणा ।
निन्दा गरहा और शुद्धि अष्टविध विषकुम्भ हैं ॥३०६॥

अप्रतिक्रमण अप्रतिसरण अर अपरिहार अधारणा ।
अनिन्दा अनिवृत्त्यशुद्धि अगर्हा अमृतकुंभ हैं ॥३०७॥

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार

है जगत में कटकादि गहनों से सुवर्ण अनन्य ज्यों ।
जिन गुणों में जो द्रव्य उपजे उनसे जान अनन्य त्यों ॥३०८॥

जीव और अजीव के परिणाम जो जिनवर कहे।
वे जीव और अजीव जानों अनन्य उन परिणाम से ॥३०९॥

ना करे पैदा किसी को बस इसलिए कारण नहीं ।
किसी से ना हो अतः यह आतमा कारज नहीं ॥३१०॥

कर्म आश्रय होय कर्ता कर्ता आश्रय कर्म भी ।
यह नियम अन्यप्रकार से सिद्धि न कर्ता-कर्म की ॥३११॥

उत्पन्न होता नष्ट होता जीव प्रकृति निमित्त से ।
उत्पन्न होती नष्ट होती प्रकृति जीव निमित्त से ॥३१२॥

यों परस्पर निमित्त से हो बंध जीव रु कर्म का ।
बस इसतरह ही उभय से संसार की उत्पत्ति हो ॥३१३॥

जबतक न छोड़े आतमा प्रकृति निमित्तिक परिणमन ।
तबतक रहे अज्ञानि मिथ्यादृष्टि एवं असंयत ॥३१४॥

जब अनन्ता कर्म का फल छोड़ दे यह आतमा ।
तब मुक्त होता बंध से सद्दृष्टि ज्ञानी संयमी ॥३१५॥

प्रकृतिस्वभावस्थित अज्ञानी कर्मफल को भोगते ।
पर ज्ञानिजन तो कर्मफल को जानते ना भोगते ॥३१६॥

गुड़-दूध पीता हुआ भी निर्विष न होता सर्प ज्यों ।
त्यों भलीभाँति शास्त्र पढ़कर अभवि प्रकृती न तजे ॥३१७॥

निर्वेद से सम्पन्न ज्ञानी मधुर-कड़वे नेक विध ।
वे जानते हैं कर्मफल को हैं अवेदक इसलिए ॥३१८॥

ज्ञानी करे-भोगे नहीं बस सभी विध-विध करम को ।
वह जानता है कर्मफल बंध पुण्य एवं पाप को ॥३१९॥

ज्यों दृष्टि त्यों ही ज्ञान जग में है अकारक अवेदक ।
जाने करम के बंध उदय मोक्ष एवं निर्जरा ॥३२०॥

जगत-जन यों कहें विष्णु करे सुर-नरलोक को ।
रक्षा करुँ षट्काय की यह श्रमण भी माने यही ॥३२१॥

तो ना श्रमण अर लोक के सिद्धान्त में अन्तर रहा ।
सम मान्यता में विष्णु एवं आतमा कर्ता रहा ॥३२२॥

इसतरह कर्तृत्व से नित ग्रसित लोक रु श्रमण को ।
मोक्ष दोनों को दिखाई नहीं देता है मुझे ॥३२३॥

अतत्वविद् व्यवहार ग्रह परद्रव्य को अपना कहें ।
पर तत्वविद् जाने कि पर परमाणु भी मेरा नहीं ॥३२४॥

ग्राम जनपद राष्ट्र मेरा कहे कोई जिसतरह ।
किन्तु वे उसके नहीं हैं मोह से ही वह कहे ॥३२५॥

इसतरह जो 'परद्रव्य मेरा' – जानकर अपना करे ।
संसय नहीं वह ज्ञानि मिथ्यादृष्टि ही है जानना ॥३२६॥

'मेरे नहीं ये' – जानकर तत्वज्ञ ऐसा मानते ।
है अज्ञता कर्तृत्वबुद्धि लोक एवं श्रमण की ॥३२७॥

मिथ्यात्व नामक प्रकृति मिथ्यात्वी करे यदि जीव को ।
फिर तो अचेतन प्रकृति ही कर्तापने को प्राप्त हो ॥३२८॥

अथवा करे यह जीव पुद्गल दरव के मिथ्यात्व को ।
मिथ्यात्वमय पुद्गल दरव ही सिद्ध होगा जीव ना ॥३२९॥

यदि जीव प्रकृति उभय मिल मिथ्यात्वमय पुद्गल करे ।
फल भोगना होगा उभय को उभयकृत मिथ्यात्व का ॥३३०॥

यदि जीव प्रकृति ना करें मिथ्यात्वमय पुद्गल दरव ।
मिथ्यात्वमय पुद्गल सहज, क्या नहीं यह मिथ्या कहो ? ॥३३१॥

कर्म अज्ञानी करे अर कर्म ही ज्ञानी करे ।
जिय को सुलावे कर्म ही अर कर्म ही जागृत करे ॥३३२॥

कर्म करते सुखी एवं दुखी करते कर्म ही ।
मिथ्यात्वमय कर्महि करे अर असंयमी भी कर्म ही ॥३३३॥

कर्म ही जिय भ्रमाते हैं उर्ध्व-अध-तिरलोक में ।
जो कुछ जगत में शुभ-अशुभ वह कर्म ही करते रहें ॥३३४॥

कर्म करते कर्म देते कर्म हरते हैं सदा ।
यह सत्य है तो सिद्ध होंगे अकारक सब आतमा ॥३३५॥

नरवेद है महिलाभिलाषी नार चाहे पुरुष को ।
परम्परा आचार्यों से बात यह श्रुतपूर्व है ॥३३६॥

अब्रह्मचारी नहीं कोई हमारे उपदेश में ।
क्योंकि ऐसा कहा है कि कर्म चाहे कर्म को ॥३३७॥

जो मारता है अन्य को या मारा जावे अन्य से ।
परघात नामक कर्म की ही प्रकृति का यह काम है ॥३३८॥

परघात करता नहीं कोई हमारे उपदेश में ।
क्योंकि ऐसा कहा है कि कर्म मारे कर्म को ॥३३९॥

सांख्य के उपदेश सम जो श्रमण प्रतिपादन करें ।
कर्ता प्रकृति उनके यहाँ पर है अकारक आतमा ॥३४०॥

या मानते हो यह कि मेरा आतमा निज को करे ।
तो यह तुम्हारा मानना मिथ्यास्वभावी जानना ॥३४१॥

क्योंकि आतम नित्य है एवं असंख्य-प्रदेशमय ।
ना उसे इससे हीन अथवा अधिक करना शक्य है ॥३४२॥

विस्तार से भी जीव का जीवत्व लोकप्रमाण है ।
ना होय हीनाधिक कभी कैसे करे जिय द्रव्य को ॥३४३॥

यदी माने रहे ज्ञायकभाव ज्ञानस्वभाव में ।
तो भी आतम स्वयं अपने आतमा को ना करे ॥३४४॥

यह आतमा हो नष्ट कुछ पर्याय से कुछ से नहीं ।
जो भोगता वह करे अथवा अन्य यह एकान्त ना ॥३४५॥

यह आतमा हो नष्ट कुछ पर्याय से कुछ से नहीं ।
जो करे भोगे वही अथवा अन्य यह एकान्त ना ॥३४६॥

जो करे, भोगे नहीं वह; सिद्धान्त यह जिस जीव का ।
वह जीव मिथ्यादृष्टि आर्हतमत विरोधी जानना ॥३४७॥

कोई करे कोई भरे यह मान्यता जिस जीव की ।
वह जीव मिथ्यादृष्टि आर्हतमत विरोधी जानना ॥३४८॥

ज्यों शिल्पि कर्म करे परन्तु कर्ममय वह ना बने ।
त्यों जीव कर्म करे परन्तु कर्ममय वह ना बने ॥३४९॥

ज्यों शिल्पि करणों से करे पर करणमय वह ना बने ।
त्यों जीव करणों से करे पर करणमय वह ना बने ॥३५०॥

ज्यों शिल्पि करणों को ग्रहे पर करणमय वह ना बने ।
त्यों जीव करणों को ग्रहे पर करणमय वह ना बने ॥३५१॥

ज्यों शिल्पि भोगे कर्मफल तन्मय परन्तु होय ना ।
त्यों जीव भोगे कर्मफल तन्मय परन्तु होय ना ॥३५२॥

संक्षेप में व्यवहार का यह कथन दर्शाया गया ।
अब सुनो परिणाम विषयक कथन जो परमार्थ का ॥३५३॥

शिल्पी करे जो चेष्टा उससे अनन्य रहे सदा ।
जीव भी जो करे वह उससे अनन्य रहे सदा ॥३५४॥

चेष्टा में मगन शिल्पी नित्य ज्यों दुःख भोगता ।
यह चेष्टा रत जीव भी त्यों नित्य ही दुःख भोगता ॥३५५॥

ज्यों कलई नहीं है अन्य की यह कलई तो बस कलई है ।
ज्ञायक नहीं त्यों अन्य का ज्ञायक तो बस ज्ञायक ही है ॥३५६॥

ज्यों कलई नहीं है अन्य की यह कलई तो बस कलई है ।
दर्शक नहीं त्यों अन्य का दर्शक तो बस दर्शक ही है ॥३५७॥

ज्यों कलई नहीं है अन्य की यह कलई तो बस कलई है ।
संयत नहीं त्यों अन्य का संयत तो बस संयत ही है ॥३५८॥

ज्यों कलई नहीं है अन्य की यह कलई तो बस कलई है ।
दर्शन नहीं त्यों अन्य का दर्शन तो बस दर्शन ही है ॥३५९॥

यह ज्ञान-दर्शन-चरण विषयक कथन है परमार्थ का ।
अब सुनो अतिसंक्षेप में तुम कथन नय व्यवहार का ॥३६०॥

परद्रव्य को ज्यों श्वेत करती कलई स्वयं स्वभाव से ।
बस त्योंहि ज्ञाता जानता परद्रव्य को निजभाव से ॥३६१॥

परद्रव्य को ज्यों श्वेत करती कलई स्वयं स्वभाव से ।
बस त्योंहि दृष्टा देखता परद्रव्य को निजभाव से ॥३६२॥

परद्रव्य को ज्यों श्वेत करती कलई स्वयं स्वभाव से ।
बस त्योंहि ज्ञाता त्यागता परद्रव्य को निजभाव से ॥३६३॥

परद्रव्य को ज्यों श्वेत करती कलई स्वयं स्वभाव से ।
सुदृष्टि त्यों ही श्रद्धता परद्रव्य को निजभाव से ॥३६४॥

यह ज्ञान-दर्शन-चरण विषयक कथन है व्यवहार का ।
अर अन्य पर्यय विषय में भी इसतरह ही जानना ॥३६५॥

ज्ञान-दर्शन-चरित ना किंचित् अचेतन विषय में ।
इसलिए यह आतमा क्या कर सके उस विषय में ॥३६६॥

ज्ञान-दर्शन-चरित ना किंचित् अचेतन कर्म में ।
इसलिए यह आतमा क्या कर सके उस कर्म में ॥३६७॥

ज्ञान-दर्शन-चरित ना किंचित् अचेतन काय में ।
इसलिए यह आतमा क्या कर सके उस काय में ॥३६८॥

सद्ज्ञान का सम्यक्त्व का उपघात चारित्र का कहा ।
अन्य पुदगल द्रव्य का ना घात किंचित् भी कहा ॥३६९॥

जीव के जो गुण कहे वे हैं नहीं परद्रव्य में ।
बस इसलिए सद्दृष्टि को है राग विषयों में नहीं ॥३७०॥

अनन्य हैं परिणाम जिय के राग-द्वेष-विमोह ये ।
बस इसलिए शब्दादि विषयों में नहीं रागादि ये ॥३७१॥

गुणोत्पादन द्रव्य का कोई अन्य द्रव्य नहीं करे ।
क्योंकि सब ही द्रव्य निज-निज भाव से उत्पन्न हों ॥३७२॥

स्तवन निन्दा रूप परिणत पुद्गलों को श्रवण कर ।
मुझ को कहे यह मान तोष-रु-रोष अज्ञानी करें ॥३७३॥

शब्दत्व में परिणमित पुद्गल द्रव्य का गुण अन्य है ।
इसलिए तुम से ना कहा तुष-रुष्ट होते अबुध क्यों ? ॥३७४॥

शुभ या अशुभ ये शब्द तुझसे ना कहें कि हमें सुन ।
अर आतमा भी कर्णगत शब्दों के पीछे न भगे ॥३७५॥

शुभ या अशुभ यह रूप तुझ से ना कहे कि हमें लख ।
यह आतमा भी चक्षुगत वर्णों के पीछे ना भगे ॥३७६॥

शुभ या अशुभ यह गंध तुम सूँघो मुझे यह ना कहे ।
यह आतमा भी घ्राणगत गंधों के पीछे ना भगे ॥३७७॥

शुभ या अशुभ यह सरस रस यह ना कहे कि हमें चख ।
यह आतमा भी जीभगत स्वादों के पीछे ना भगे ॥३७८॥

शुभ या अशुभ स्पर्श तुझसे ना कहें कि हमें छू ।
यह आतमा भी कायगत स्पर्शों के पीछे ना भगे ॥३७९॥

शुभ या अशुभ गुण ना कहे तुम हमें जानो आत्मन् ।
यह आतमा भी बुद्धिगत सुगुणों के पीछे ना भगे ॥३८०॥

शुभ या अशुभ द्रव्य ना कहे तुम हमें जानो आत्मन् ।
यह आतमा भी बुद्धिगत द्रव्यों के पीछे ना भगे ॥३८१॥

यह जानकर भी मूढ़जन ना गहें उपशमभाव को ।
मंगलमती को ना ग्रहें पर के ग्रहण का मन करें ॥३८२॥

शुभ-अशुभ कर्म अनेकविध हैं जो किए गतकाल में ।
उनसे निवर्तन जो करे वह आतमा प्रतिक्रमण है ॥३८३॥

बंधेंगे जिस भाव से शुभ-अशुभ कर्म भविष्य में ।
उससे निवर्तन जो करे वह जीव प्रत्याख्यान है ॥३८४॥

शुभ-अशुभ भाव अनेकविध हो रहे सम्प्रति काल में ।
इस दोष का ज्ञाता रहे वह जीव है आलोचना ॥३८५॥

जो करें नित प्रतिक्रमण एवं करें नित आलोचना ।
जो करें प्रत्याख्यान नित चारित्र हैं वे आतमा ॥३८६॥

जो कर्मफल को वेदते निजरूप माने करमफल ।
हैं बाँधते वे जीव दुख के बीज वसुविध करम को ॥३८७॥

जो कर्मफल को वेदते माने करमफल मैं किया ।
हैं बाँधते वे जीव दुख के बीज वसुविध करम को ॥३८८॥

जो कर्मफल को वेदते हों सुखी अथवा दुखी हों ।
हैं बाँधते वे जीव दुख के बीज वसुविध करम को ॥३८९॥

शास्त्र ज्ञान नहीं है क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही शास्त्र अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९०॥

शब्द ज्ञान नहीं है क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही शब्द अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९१॥

रूप ज्ञान नहीं है क्योंकि रूप कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही रूप अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९२॥

वर्ण ज्ञान नहीं है क्योंकि वर्ण कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही वर्ण अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९३॥

गंध ज्ञान नहीं है क्योंकि गंध कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही गंध अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९४॥

रस नहीं है ज्ञान क्योंकि कुछ भी रस जाने नहीं ।
बस इसलिए ही अन्य रस अरु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९५॥

स्पर्श ज्ञान नहीं है क्योंकि स्पर्श कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए स्पर्श अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९६॥

कर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि कर्म कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही कर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९७॥

धर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि धर्म कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही धर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९८॥

अधर्म ज्ञान नहीं है क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही अधर्म अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥३९९॥

काल ज्ञान नहीं है क्योंकि काल कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए ही काल अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥४००॥

आकाश ज्ञान नहीं है क्योंकि आकाश कुछ जाने नहीं ।
बस इसलिए आकाश अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥४०१॥

अध्यवसान ज्ञान नहीं है क्योंकि वे अचेतन जिन कहे ।
इसलिए अध्यवसान अन्य रु ज्ञान अन्य श्रमण कहें ॥४०२॥

नित्य जाने जीव बस इसलिए ज्ञायकभाव है ।
है ज्ञान अव्यतिरिक्त ज्ञायकभाव से यह जानना ॥४०३॥

ज्ञान ही समदृष्टि संयम सूत्र पूर्वगतांग भी ।
सद्धर्म और अधर्म दीक्षा ज्ञान हैं – यह बुध कहें ॥४०४॥

आहार पुद्गलमयी है बस इसलिए है मूर्तिक ।
ना अहारक इसलिए ही यह अमूर्तिक आतमा ॥४०५॥

परद्रव्य का ना ग्रहण हो ना त्याग हो इस जीव के ।
क्योंकि प्रायोगिक तथा वैस्त्रसिक स्वयं गुण जीव के ॥४०६॥

इसलिए यह शुद्धातमा पर जीव और अजीव से ।
कुछ भी ग्रहण करता नहीं कुछ भी नहीं है छोड़ता ॥४०७॥

ग्रहण कर मुनिलिंग या गृहिलिंग विविध प्रकार के ।
यह लिंग ही है मुक्तिमग यह कहें कतिपय मूढ़जन ॥४०८॥

पर मुक्तिमग ना लिंग क्योंकि लिंग तज अरिहंत जिन ।
निज आत्म अरु सद्-ज्ञान-दर्शन-चरित का सेवन करें ॥४०९॥

बस इसलिए गृहिलिंग या मुनिलिंग ना मग मुक्ति का ।
जिनवर कहें बस ज्ञान-दर्शन-चरित ही मग मुक्ति का ॥४१०॥

बस इसलिए अनगार या सागार लिंग को त्यागकर ।
जुड़ जा स्वयं के ज्ञान-दर्शन-चरणमय शिवपंथ में ॥४११॥

मोक्षपथ में थाप निज को चेतकर निज ध्यान धर ।
निज में ही नित्य विहार कर परद्रव्य में न विहार कर ॥४१२॥

ग्रहण कर मुनिलिंग या गृहिलिंग विविध प्रकार के ।
उनमें करें ममता न जाने वे समय के सार को ॥४१३॥

व्यवहार से ये लिंग दोनों कहे मुक्तीमार्ग में ।
परमार्थ से तो नहीं कोई लिंग मुक्तीमार्ग में ॥४१४॥

पढ़ समयप्राभृत ग्रंथ यह तत्त्वार्थ से जो जानकर ।
निज अर्थ में एकाग्र हों वे परमसुख को प्राप्त हों ॥४१५॥

पंचविंशति पंचदश श्री वीर के निर्वाण दिन ।
पूरा हुआ इस ग्रन्थ का शुभ पद्यमय अनुवाद यह ॥४१६॥

मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझ में कुछ गन्ध नहीं।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं॥
मैं रंग-राग से भिन्न, भेद से भी मैं भिन्न निराला हूँ।
मैं हूँ अखण्ड चैतन्यपिण्ड, निज रस में रमने वाला हूँ॥
मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता, मुझ में पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझ में रहने वाला हूँ, पर में मेरा विश्राम नहीं॥
मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक, पर-परणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व, मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ॥

-डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल